<u>हिन्दी प्रतिष्ठा प्रथम वर्ष, पत्र- 1</u>

कबीर दास का समाज सुधारक रूप

कबीरदास भक्ति साहित्य के निर्गुण धारा के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक कवि हैं। कबीरदास का आगमन उस समय हुआ जब भारत में तुगलक वंश का शासन था। हिंदू जाति, धर्म, आदि का अपहरण किया जा रहा था। सोमनाथ के शिव मंदिर का विनाश हो रहा था। हिंदू के मंदिरों को तोड़कर वहां मस्जिद बनाए जा रहे थे। इस समय हिंदू जनता अपने पौरुष से हताश हो चुकी थी तथा विदेशियों का सामना करने में अपने को असमर्थ पा रही थी। हिंदुओं को अपने धर्म को छोड़कर इस्लाम धर्म को अपनाने के लिए जबरन मजबूर किया जा रहा था। तब अपने पौरूष से हताश जाति के लिए ईश्वर के समक्ष झुकने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं था। जनता भक्ति की ओर मुड़ रही थी। अंधविश्वास, बाह्याडंबर, जातिवाद, संप्रदायवाद, शास्त्रवाद आदि से जनता त्रस्त हो चुकी थी। उस समय कबीरदास ने लोगों को मध्यम मार्ग पर चलने का राह बतलाया। उन्होंने हिंदुओं तथा मुसलमानों दोनों को उनके कुकृत्य के लिए, बाह्य आडंबर के लिए, फटकार लगाया। हिंदुओं से उन्होंने कहा,

पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजू पहाड़।

ताते यह चाकी भली पीस खाए संसार।।

मुसलमानों दुत्कारते हुए उन्होंने कहा,

कांकर पाथर जोड़ के मस्जिद लियो बनाए।

ता चढ़ी मुल्ला बांग दे का बहरा हुआ खुदाय।।

तत्कालीन परिवेश में जाति प्रथा बढ़ती जा रही थी। लोग अलग-अलग वर्गों में विभक्त होते जा रहे थे। उस वक्त कबीरदास ने हिंदुओं और मुसलमानों को फटकारते हुए कहा,

जो तू बाभन बाभनी जाए, आन वाट काहे नहीं आए

जो तू तुरुक तुरुकनी भाए, भीतर खतना क्यों न कराए।।

संप्रदायवाद के विरोध में उन्होंने कहा,

एक बूंद ते विश्व रचे है को बाभन को शूदा।।

हिंदू जनता शास्त्रों की जटिलता में उलझकर धार्मिक कर्मकांड में अपने जीवन को बर्बाद कर रही थी

तब उन्होंने शास्त्र और जीवन के बीच तुलना करते हुए शास्त्र के बजाय जीवन यथार्थ को अधिक महत्वपूर्ण प्रमाणित किया।

मैं कहता आंखिन देखी, तू कहता कागद लेखी।

मैं कहता सुरझावन हारी तू कहता अरुझाई।।

कबीरदास जन समुदाय में फैले हुए हिंसा की प्रवृत्ति से अत्यंत दुखी थे उन्होंने हिंसा की प्रवृत्ति के प्रति मानवों को सचेत करते हुए कहा,

बकरी पाती खात है ताकि काढि खाल ।

जो जन बकरी खात है ताको कौन हवाल।।

मुसलमानों के गौ-हत्या का विरोध करते हुए उन्होंने कहा,

जा का दूध धाय के पीजै, वा माता का वध क्यों कीजै ।

यहां सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि उन्होंने गाय के वध को पाप और किसी अन्य जीव के वध को पुण्य नहीं माना है। उनके नजर में जितना जघन्य गाय का वध है उतना ही बकरी या किसी किसी अन्य जीव की हत्या भी।

कबीरदास की भक्ति वैष्णव धर्म से प्रभावित है। कबीर को राम नाम रामानंद से प्राप्त हुआ लेकिन आगे चलकर कबीर के राम रामानंद के राम से अलग हो गए। वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण ही अपने काव्य में स्थान-स्थान पर कबीर ने राम, गोविंद आदि शब्दों को प्रयोग में लाया। किंतु उनका मानना था कि मैं जिस राम की पूजा करता हूं वह हम सबों के भीतर बसता है उसे कहीं बाहर तलाशने की आवश्यकता नहीं है,

कस्तूरी कुंडल बसे मृग ढूंढे वन माहि।

ऐसे घटि घटि राम है दुनिया देखे नाही।।

कबीरदास ने अपनी चिंतनधारा से हिंदी साहित्य में संतकाव्य परंपरा को स्थापित किया। संतकाव्य जिन तत्वों के साथ आगे बढ़ता है उसका मूल कबीरदास में विद्यमान है। इन्होंने न सिर्फ एक कवि का बल्कि एक दार्शनिक, चिंतक और एक समाज सुधारक की भूमिका भी अत्यंत सजगता से निभाई।

<u>हिन्दी प्रतिष्ठा प्रथम वर्ष, पत्र- 2</u>

सरोज स्मृति कविता का केंद्रीय भाव

'सरोज स्मृति' हिंदी जगत का सर्वाधिक प्रसिद्ध शोक गीत है। सरोज स्मृति निराला ने अपनी पुत्री की मृत्यु पर लिखी और इसमें अपने जीवन के लिए पुत्री को वह महत्व दिया जो उनसे पहले किसी कवि ने न दिया था । सरोज बीमारी से और समुचित चिकित्सा ना होने के कारण मरी थी किंतु निराला इस घटना को एक अलौकिक रूप प्रदान कर देते हैं । कहते हैं सरोज मरी नहीं है उसने पूर्ण आलोक का वर्णन किया है । उसके जीवन के 18 वर्ष पूरे हो चुके थे । यह 18 अध्यायों वाली जीवन-गीता का पूरा होना था । सरोज स्मृति के बहाने निराला ने व्यक्तिगत चेतना को सामाजिक विश्लेषण के रूप में चित्रित किया है।

सरोज की असामयिक निधन निराला को अंदर तक तोड़ कर रख देता है। सरोज की मौत आर्थिक विपन्नता के कारण दवा के अभाव में हुई ।निराला अपने जीवन की इस निरर्थकता को जिस सार्थकता से स्वीकारते हैं वह पाठक को अंदर तक भींगा देता है-

" धन्ये, मैं पिता निरर्थक था / कुछ भी तेरे हित न कर सका!/ जाना तो अर्थागमोपाय,/पर रहा सदा संकुचित-काय/ लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर/ हारता रहा में स्वार्थ समर ।

निराला का पुत्री प्रेम नवीन जनतांत्रिक चेतना की देन है, जो पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं करती है और दोनों को समान महत्व देती है। वे सरोज के बचपन को याद करते हुए उसे ही संबोधित कर कहते हैं -

" खाई भाई की मार, विकल/ रोई उत्पल-दल-दृग छलछल/ चुमकारा फिर उसने निहार,/ फिर गंगा-तट-सैकत-विहार/ करने को लेकर साथ चला,/ तू गहकर चली हाथ चपला /आंसुओं-धुला मुख हासोच्छल,/ लखती प्रसार वह ऊर्मि-धवल ।"

यह सत्य है कि कविता के केंद्र में सरोज की मृत्यु है और कवि उसी केंद्र से स्वयं को जोड़ते हुए अपने जीवन की गहरी छानबीन भी कर रहा है। कवि अपने व्यक्तित्व का परिचय देते हुए अपने हालातों की रूपरेखा खींचता है ।निराला मुठभेड़ के कवि हैं। वे अपने जीवन की आपबीती बताते हुए कहते हैं, उनके ऊपर चारों तरफ से प्रहार किया गया है किंतु ऐसे विकट क्षणों में भी निराला हिले नहीं अडिग बने रहे -

" एक साथ जब घात घूर्ण/ आते थे मुझ पर तुले तूर्ण,/ देखता रहा मैं खड़ा अपल/वह शर-क्षेप, वह रण-कौशल ।/ व्यक्त हो चुका चीत्कारोत्कल/ क्रुद्ध युद्ध का रुध्द- कंठ फल /और भी फलित होगी वह छवि,/ जागे जीवन जीवन का रवि,/लेकर कर कल तूलिका कला ,/ देखो क्या रंग

भरती विमला ,/ वांछित उस किस लांछित छवि पर/ फेरती स्नेह की कूची भर ।"

निराला छायावाद के ऐसे कवि हैं जिनकी रचना द्वंद के कोख से जन्म लेती है और फिर पूरी मानवीय संवेदना के साथ हमारे सामने प्रस्तुत होती है ।निराला इस रचना के माध्यम से अपने उस अतीत का भी स्मरण करते हैं जब उनकी कविता जूही की कली मुक्त छंद होने के कारण प्रकाशक द्वारा लौटा दी जाती है -

" लौटी रचना लेकर उदास/ ताकता हुआ मैं दिशाकाश / बैठा प्रांतर में दीर्घ प्रहर/ व्यतीत करता था गुन-गुन कर/ संपादक के गुण; यथाभ्यास/ पास की नोंचता हुआ घास/ अज्ञात फेंकता इधर-उधर/ भाव की चढ़ी पूजा उन पर ।"

निराला के काव्य में लीपा-पोती नहीं है। सच को सच कहना निराला के जीवन की नियति है। वे अपने इस काव्य के माध्यम से वर्णाश्रम व्यवस्था पर भी कड़ी प्रहार करते हैं। सरोज की शादी के लिए निराला को योग्य ब्राह्मण वर ढूंढने का लोगों ने प्रस्ताव दिया था जिस पर वे कहते हैं-

" ये कान्यकुब्ज-कुल-कुलांगार; खाकर पत्तल में करें छेद/ इनके कर कन्या ,अर्थ खेद ,/इस विषय-बेलि में विष ही फल,/ यह दग्ध मरुस्थल- नहीं सुजल।"

निराला की वेदना सरोज स्मृति में असीम हो गई है ।ऐसा नहीं है कि यह वेदना इन की प्रथम वेदना है। इससे पहले पत्नी की मौत निराला को बहुत तोड़ती है किंतु पुत्री की छवि देखकर निराला उस गम को भूल जाते हैं सरोज की मौत के बाद निराला के जीवन में बचा ही क्या ! मरणासन्न सरोज के कदमों पर अपने जीवन के तमाम साधना को पटक कर निराला अपने आप को अर्पित करते हैं -

" दुख ही जीवन की कथा रही,/ क्या कहूं आज, जो नहीं कही!/हो इसी कर्म पर वज्रपात /यदि धर्म, रहे नत सदा माथ/ इस पथ पर, मेरे कार्य सकल/हों भ्रष्ट शीत के- से शतदल !/कन्ये,गत कर्मों का अर्पण /कर , करता मैं तेरा तर्पण !

सरोज स्मृति की यह वेदना छायावाद की एक बड़ी विशेषता है । जहां कवि दु:ख को ओढ़ता बिछाता है ।सरोज स्मृति में आत्माभिव्यक्ति की जो प्रवृत्ति है वह भी छायावाद युग से ही देखने को मिलती है । निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि छायावाद युग की यह कविता एक और सरोज की मौत के कारणों का पता देती है तो दूसरी ओर निराला के व्यक्तित्व का परिचय भी ।

हिन्दी प्रतिष्ठा द्वितीय वर्ष, पत्र- 3

'उसने कहा था' कहानी का केंद्रीय भाव।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने हिंदी गद्य की अनेक विधाओं में सृजन किया है। विशेषरूप से उनकी पहचान तथा ख्याति एक कथाकार के रूप में हुई है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी ऐसे अकेले कथाकार थे जिन्होंने मात्र तीन कहानियां लिखकर कथा साहित्य को नई दिशा और आयाम दिया। उनकी लिखी तीन कहानियां ही प्रमाणिक तौर पर उपलब्ध हैं- 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काटा', और 'उसने कहा था'। उसने कहा था सन् 1915 ई. में सरस्वती पत्रिका में छपी थी। गुलेरी जी की उसने कहा था शीर्षक कहानी हिंदी की पहली सर्वोत्तम कहानी मानी जाती है। यह कहानी प्रेम, शौर्य और बलिदान की अद्भुत गाथा है। उसने कहा था कहानी आज भी उतनी ही नवीन और तरोताजा है जितनी अपने समय में रही थी। इस कहानी का प्रमुख पात्र लहना सिंह है जो बारह वर्ष की छोटी अवस्था में अमृतसर की सड़कों पर एक आठ वर्षीय लड़की की जान बचाने के लिए अपने जान की बाजी लगा देता है। दो-तीन दिनों की मुलाकात में ही उस लड़की के प्रति उसकी अगाध प्रीति इस प्रकार जन्म ले लेती है कि पचीस वर्ष बाद वही लड़की जब उसे सूबेदारनी के रूप में मिलती है तो उसके द्वारा दिए गए वचन को पूरा करने के लिए यानी उसके पति और बेटे की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध होकर वह मृत्यु के गाल में समा जाता है। पांच खंडों और पच्चीस वर्षों के लंबे अंतराल में खुद को समेटे हुए यह कहानी प्रेम, कर्तव्य और देशप्रेम के मूल उद्देश्यों से जुड़ी हुई है। उसने कहा था प्रथम विश्वयुद्ध के तुरंत बाद लिखी गई कहानी है जिसमें फ्रांस में जर्मनी से लड़ते हुए भारतीय सिपाही का वर्णन किया गया है। लहना सिंह ने अपनी समझ और सूझबूझ के कारण जर्मनी सेना द्वारा भारतीय टुकड़ी को धोखा देने की चेष्टा को विफल करते हुए सभी सिपाहियों की जान बचाई। सूबेदारनी अपने पति और पुत्र हजारा सिंह तथा बोधा सिंह की रक्षा के लिए लहना सिंह से अनुरोध करती है कि, बरसों पहले तुमने मुझे घोड़े के टाप से बचाया था इस बार भी मेरी सहायता करना मेरे पति और पुत्र दोनों युद्ध में जा रहे हैं इनकी रक्षा करना। लहना सिंह अपने प्राण देकर बोधा सिंह और हजारा सिंह के प्राणों की रक्षा करता है। ऐसे लहना सिंह ने सूबेदारनी के मात्र उसने कहा था वाक्य को ध्यान में रखकर प्राण उत्सर्ग किया जो इस कहानी को 'उसने कहा था' शीर्षक की सार्थकता प्रदान करता है। इस पूरी कहानी का कथानक लहना सिंह के त्याग और बलिदान पर आधारित है। उसने कहा था कहानी कला की दृष्टि से एक बहुत ही सफल कहानी है। जिसमें लहना सिंह के माध्यम से गुलेरी जी ने निश्छल प्रेम, प्रण-पालन, त्याग और बलिदान आदि का संदेश दिया है। इस कहानी में पहली बार फ्लैशबैक शैली का प्रयोग किया गया है जिसमें लहना सिंह के द्वारा पूर्व की घटनाओं को याद किया जाता है। इसके पहले हिंदी कहानी में फ्लैशबैक शैली का प्रयोग नहीं मिलता है। डॉ. नगेंद्र ने उनकी कहानियों पर अपनी टिप्पणी

देते हुए 'उसने कहा था' को हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कहानी माना है। मधुरेश ने इनकी कहानी की समीक्षा करते हुए लिखा है कि उसने कहा था वस्तुतः हिंदी की पहली कहानी है जो शिल्प विधान की दृष्टि से हिंदी कहानी को एक झटके में प्रौढ़ बना देती है। प्रेम बलिदान और कर्तव्य की भावना से अनेक कहानियां लिखी गई हैं परंतु यह कहानी अपनी मानसिकता और संगठन के कारण आज भी अद्वितीय बनी हुई है। हिंदी कहानी के आरंभ काल में ही ऐसी श्रेष्ठ रचना का प्रकाशित होना एक महत्वपूर्ण घटना है।

(आवश्यक निर्देश- छात्र-छात्राओं को निर्देशित किया जाता है कि वह इसी तरह से अन्य पाठों का भी भली प्रकार अध्ययन कर पाठ के केंद्रीय भाव को समझें। उससे संबंधित प्रश्न-उत्तरों का अभ्यास करते रहें। विश्वविद्यालय के द्वारा प्रदत्त पाठ्य-सामग्रियों में मूल पाठ के साथ पाठ का सारांश, उसका उद्देश्य, लेखक परिचय जैसे आवश्यक तत्व संकलित हैं। जिसका अध्ययन छात्रों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।)

डॉ.बद्रीनारायण सिंह

समन्वयक हिन्दी, नालंदा मुक्त विश्वविद्यालय ।

हिन्दी प्रतिष्ठा द्वितीय वर्ष, पत्र- 4

'नाखून क्यों बढ़ते हैं' का केंद्रीय भाव।

'नाखून क्यों बढ़ते हैं' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का एक वैचारिक निबंध है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद हिंदी निबंध को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यापक रूप से प्रभावित किया है। हिंदी साहित्य में चिंतनपरक निबंध, वैचारिक निबंध, ललित निबंध, सभी का स्वरूप आचार्य द्विवेदी के निबंधों में पाया जा सकता है। भारतीय संस्कृति से जुड़े हुए पहलुओं को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जिस कलात्मकता के साथ निबंधों के विषय के रूप में ग्रहण किया है वह अप्रतिम है। द्विवेदी जी 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध में मानव सभ्यता के विकास से लेकर अभी तक के मानवीय विकास को रेखांकित किया है । मनुष्य अपने विकारों के ऊपर एक आवरण डाल देता रहा है। निबंध में एक प्रश्न उठता है कि मनुष्य बार-बार अपने नाखून को काटता है, छोटा करता है फिर वह बार-बार क्यों बढ़ जाता है ? इसके जवाब में चिंतन-मनन करते हुए निबंधकार वहां तक पहुंच जाते हैं जो निश्चित ही मानव सभ्यता के लिए सांकेतिक रूप में एक चेतावनी है। मनुष्य बार-बार अपने केस, नाखून आदि को काटता है, छोटा करता है जो कि उसके सभ्य होने का प्रतीक है। लेकिन वास्तव में मनुष्य का विकास भी प्रकृति के अन्य जीव-जंतुओं की तरह ही हुआ है। अन्य जीव-जंतुओं की तरह ही मनुष्य के शरीर पर केस रहे हैं, उसका नाखून लंबा और तीक्ष्ण रहा है। मनुष्य अपनी सभ्यता के कारण निरंतर इन चीजों से खुद को अलग करता रहा है। मनुष्य के भीतर उसका पशुत्व सदैव विद्यमान रहता है जो अलग-अलग अवसर पर मौका पाते ही जाग उठता है। द्विवेदी जी कहते हैं कि मानव अपनी सभ्यता का परिचय देने के लिए या अपनी पशुता को छुपाने के लिए, अपने हिंसक प्रवृत्ति को छुपाने के लिए खुद को साफ-सुथरा रखता है। अपने नाखून काट-छांट कर रखता है, लेकिन इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि मनुष्य अपने वास्तविक रूप में पशुओं के समान ही था। वह अपनी हिंसक प्रवृत्ति को दबाए अवश्य रखता है लेकिन वह मौके मौके पर पुनः उभर आता है और मनुष्य को फिर से उसे दबाना पड़ता है। मनुष्य की उन्हीं प्रवृत्तियों का प्रतिबिंब उसका नाखून है जो बार-बार बढ़ जाता है और यह संकेत देता है कि मनुष्य के भीतर उसके हिंसक प्रवृत्ति अभी भी विद्यमान है। द्विवेदी जी कहते हैं कि मनुष्य को भी अपनी प्रारंभिक अवस्था में अन्य वन्य प्राणियों की तरह शिकार के लिए, अपने आहार के लिए नाखूनों की आवश्यकता पड़ती थी। बाद में वह धीरे-धीरे अपने शरीर से बाहर के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करने लगा। वह लकड़ी से शिकार करने लगा। पत्थरों के अस्त्र बनाने लगा। हड्डियों का अस्त्र बनाने लगा। और आगे चलकर जब उसने लोहे का विकास किया तब तो उसके पास एक से एक सूक्ष्म और तीक्ष्ण हथियारों का अंबार लग गया। प्रकृति ने उसे जो नख दिए थे वह उसके लिए अनुपयोगी हो गया, उसे वह काट-छांट कर सुंदर रूप देने लगा।

(आवश्यक निर्देश- छात्र-छात्राओं को निर्देशित किया जाता है कि वह इसी तरह से अन्य पाठों का भी भली प्रकार अध्ययन कर पाठ के केंद्रीय भाव को समझें। उससे संबंधित प्रश्न-उत्तरों का अभ्यास करते रहें। विश्वविद्यालय के द्वारा प्रदत्त पाठ्य-सामग्रियों में मूल पाठ के साथ पाठ का सारांश, उसका उद्देश्य, लेखक परिचय जैसे आवश्यक तत्व संकलित हैं। जिसका अध्ययन छात्रों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।)

डॉ. बद्रीनारायण सिंह

समन्वयक हिन्दी, नालंदा मुक्त विश्वविद्यालय ।